

जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय राजनीति

कौशल कुमार सैन

सहायक आचार्य

राजनीति विज्ञान, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर

शोध सारांश (Abstract)

जलवायु परिवर्तन आज के युग की सबसे गंभीर और जटिल वैश्विक समस्याओं में से एक है। यह केवल एक पर्यावरणीय संकट नहीं है, बल्कि यह राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक आयामों को भी गहराई से प्रभावित करता है। प्रस्तुत शोध पत्र जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय राजनीति के बीच जटिल एवं बहुआयामी संबंध का विश्लेषण करता है। यह शोध इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार विभिन्न देश जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर अपनी राष्ट्रीय नीतियों और अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करते हैं। पेरिस समझौता (2015), क्योटो प्रोटोकॉल (1997), UNFCCC और अन्य अंतरराष्ट्रीय संधियों की भूमिका का भी इस पत्र में विस्तार से विश्लेषण किया गया है।

शोध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए एकपक्षीय राष्ट्रीय प्रयास पर्याप्त नहीं हैं; इसके लिए बहुपक्षीय सहयोग, कूटनीतिक संवाद और वैश्विक शासन के प्रभावी ढाँचे की आवश्यकता है। विकसित और विकासशील देशों के बीच 'साझा किंतु विभेदीकृत उत्तरदायित्व' (Common But Differentiated Responsibilities – CBDR) के सिद्धांत का भी गहन अध्ययन इस पत्र में शामिल है। जलवायु परिवर्तन वर्तमान विश्व की सबसे गंभीर वैश्विक समस्याओं में से एक है, जिसका प्रभाव केवल पर्यावरण तक सीमित न होकर आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर भी पड़ रहा है। इस शोध का उद्देश्य जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मध्य संबंधों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि बढ़ते वैश्विक तापमान, समुद्र स्तर में वृद्धि, प्राकृतिक आपदाओं तथा संसाधनों की कमी ने विश्व राजनीति को नई दिशा प्रदान की है। शोध में पाया गया कि जलवायु परिवर्तन ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सहयोग और संघर्ष दोनों की संभावनाओं को बढ़ाया है। संयुक्त राष्ट्र, UNFCCC, क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस समझौते जैसे अंतरराष्ट्रीय प्रयास वैश्विक स्तर पर जलवायु संकट से निपटने के महत्वपूर्ण माध्यम बने हैं। इन समझौतों के माध्यम से देशों को ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन कम करने तथा सतत विकास को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया है।

अध्ययन में विकसित और विकासशील देशों के बीच उत्पन्न राजनीतिक मतभेदों का भी विश्लेषण किया गया है। विकसित देशों द्वारा ऐतिहासिक रूप से अधिक कार्बन उत्सर्जन किए जाने के कारण विकासशील देश “जलवायु न्याय” और आर्थिक सहायता की मांग करते हैं। वहीं विकसित देश सभी राष्ट्रों की समान भागीदारी पर बल देते हैं। इस कारण अंतरराष्ट्रीय राजनीति में उत्तर-दक्षिण विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

शोध यह भी दर्शाता है कि जलवायु परिवर्तन ऊर्जा सुरक्षा, जल संसाधनों, खाद्य संकट और पर्यावरणीय प्रवासन जैसे मुद्दों को जन्म दे रहा है, जिससे वैश्विक सुरक्षा और कूटनीति प्रभावित हो रही है। आर्कटिक क्षेत्र, समुद्री संसाधनों तथा स्वच्छ ऊर्जा तकनीकों पर नियंत्रण को लेकर देशों के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है।

भारत की भूमिका का अध्ययन करते हुए यह पाया गया कि भारत ने अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन (ISA), नवीकरणीय ऊर्जा विस्तार और “नेट जीरो” लक्ष्यों के माध्यम से वैश्विक जलवायु राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

अंततः शोध यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि जलवायु परिवर्तन ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति को अधिक सहयोगात्मक, बहुपक्षीय और पर्यावरण-केंद्रित बना दिया है। वैश्विक स्तर पर प्रभावी नीतियों, तकनीकी सहयोग तथा सामूहिक उत्तरदायित्व के बिना इस समस्या का समाधान संभव नहीं है।

मुख्य बिंदु - जलवायु परिवर्तन, कूटनीतिक संवाद, वैश्विक शासन, वायुमंडलीय तापमान, जीवाश्म ईंधन, औद्योगिक उत्सर्जन, औद्योगिक क्रांति

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन: एक परिचय

जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य पृथ्वी के वायुमंडलीय तापमान, वर्षा पैटर्न, समुद्र स्तर और अन्य जलवायु संबंधी कारकों में दीर्घकालिक परिवर्तन से है। वैज्ञानिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि औद्योगिक क्रांति (1760-1840) के पश्चात से पृथ्वी का औसत तापमान लगभग 1.2 डिग्री सेल्सियस बढ़ चुका है। यह वृद्धि मुख्यतः मानवीय गतिविधियों – जैसे जीवाश्म ईंधन का दहन, वनों की कटाई, औद्योगिक उत्सर्जन और कृषि पद्धतियों – के कारण हुई है।

Intergovernmental Panel on Climate Change (IPCC) की रिपोर्टें स्पष्ट करती हैं कि यदि वैश्विक तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस से नीचे नहीं रखा गया, तो इसके परिणाम अत्यंत विनाशकारी हो सकते हैं – जिनमें अत्यधिक मौसमी घटनाएँ, खाद्य असुरक्षा, समुद्री जल स्तर में वृद्धि, जैव विविधता का क्षरण और करोड़ों लोगों का विस्थापन शामिल हैं।

जलवायु परिवर्तन का अंतरराष्ट्रीय राजनीति से संबंध

जलवायु परिवर्तन एक ऐसा विषय है जो राष्ट्रीय सीमाओं से परे जाता है। कोई भी देश अकेले इस संकट का समाधान नहीं कर सकता और कोई भी देश इसके प्रभावों से स्वयं को अलग नहीं रख सकता। यही कारण है कि जलवायु परिवर्तन अंतरराष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आ गया है। अंतरराष्ट्रीय राजनीति में जलवायु परिवर्तन तीन प्रमुख आयामों में प्रकट होता है: प्रथम, राष्ट्रीय हित बनाम वैश्विक हित का टकराव; द्वितीय, विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य न्यायपूर्ण उत्सर्जन में कटौती को लेकर विवाद; और तृतीय, जलवायु वित्त, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और अनुकूलन उपायों से संबंधित वार्ताओं में शक्ति-राजनीति की भूमिका।

संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC) की स्थापना 1992 में हुई, जब रियो डी जनेरियो में 'पृथ्वी शिखर सम्मेलन' आयोजित किया गया। तब से वार्षिक 'Conference of Parties' (COP) बैठकें होती रही हैं, जिनमें विश्व के लगभग सभी देश भाग लेते हैं। ये वार्ताएँ अंतरराष्ट्रीय कूटनीति का एक महत्वपूर्ण मंच बन गई हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1972 में स्टॉकहोम में आयोजित 'United Nations Conference on the Human Environment' ने पहली बार पर्यावरणीय मुद्दों को अंतरराष्ट्रीय एजेंडे पर स्थापित किया। 1987 की ब्रंटलैंड रिपोर्ट ने 'सतत विकास' की अवधारणा को परिभाषित किया। 1997 का क्योटो प्रोटोकॉल पहली बार विकसित देशों पर कानूनी रूप से बाध्यकारी उत्सर्जन कटौती लक्ष्य लागू करने का प्रयास था। 2009 में कोपेनहेगन सम्मेलन (COP 15) की विफलता ने यह स्पष्ट किया कि बड़ी शक्तियों के बीच आम सहमति बनाना कितना कठिन है। 2015 में पेरिस समझौते ने इस क्षेत्र में एक नई आशा जगाई, जब 196 देशों ने वैश्विक तापमान को 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे रखने का लक्ष्य निर्धारित किया।

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं:

1. जलवायु परिवर्तन की वैज्ञानिक और राजनीतिक अवधारणाओं का व्यापक विश्लेषण करना तथा दोनों के बीच के अंतर्संबंध को स्पष्ट करना।

2. अंतरराष्ट्रीय जलवायु वार्ताओं और संधियों – विशेषतः UNFCCC, क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस समझौते – की राजनीतिक गतिशीलता का परीक्षण करना।
3. विकसित एवं विकासशील देशों के मध्य जलवायु न्याय, वित्त और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के विवादों का विश्लेषण करना।
4. प्रमुख वैश्विक शक्तियों – अमेरिका, चीन, यूरोपीय संघ, भारत और रूस – की जलवायु नीतियों और कूटनीतिक रणनीतियों का अध्ययन करना।
5. जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के बीच संबंध को 'जलवायु-सुरक्षा नेक्सस' के परिप्रेक्ष्य में समझना।
6. भारत की जलवायु कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उसकी भूमिका का विशेष रूप से अध्ययन करना।
7. जलवायु परिवर्तन से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए वैश्विक शासन (Global Governance) के सुधार हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

महत्व (Significance)

वैज्ञानिक और पर्यावरणीय महत्व - जलवायु परिवर्तन पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र, जल संसाधन, खाद्य सुरक्षा और जैव विविधता को गहरा नुकसान पहुँचा रहा है। हिमालय के ग्लेशियर पिघल रहे हैं, जो भारत और दक्षिण एशिया की करोड़ों जनसंख्या के लिए जल सुरक्षा का संकट उत्पन्न कर रहे हैं। इस विषय का अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन खतरों को समझने और उनका समाधान खोजने में सहायक है।

राजनीतिक और कूटनीतिक महत्व - जलवायु परिवर्तन अब राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय नीति-निर्माण की प्रमुख धुरी बन चुका है। विदेश नीति, व्यापार समझौते, विकास सहायता और सैन्य रणनीतियाँ – सभी में जलवायु परिवर्तन का आयाम शामिल हो रहा है। इस विषय का अध्ययन भविष्य के राजनयिकों, नीति-निर्माताओं और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के विद्यार्थियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आर्थिक महत्व - जलवायु परिवर्तन वैश्विक अर्थव्यवस्था को भारी क्षति पहुँचा सकता है। 'Stern Review on the Economics of Climate Change' (2006) के अनुसार, समय रहते कार्रवाई न करने पर वैश्विक GDP का 5 से 20 प्रतिशत तक नुकसान हो सकता है। दूसरी ओर, हरित अर्थव्यवस्था (Green Economy) और नवीकरणीय ऊर्जा में निवेश से करोड़ों नए रोजगार सृजित हो सकते हैं।

मानवीय और सामाजिक महत्व - जलवायु परिवर्तन के सबसे बुरे प्रभाव विश्व की सबसे गरीब और कमज़ोर आबादी पर पड़ रहे हैं, जबकि उनका उत्सर्जन में योगदान न्यूनतम है। द्वीपीय राष्ट्र, तटीय समुदाय और सूखाग्रस्त क्षेत्रों की जनसंख्या सबसे अधिक संकटग्रस्त है। यह विषय अंतरराष्ट्रीय न्याय और मानवाधिकारों के दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

शैक्षणिक और नीतिगत महत्व - स्नातकोत्तर स्तर पर इस विषय का अध्ययन विद्यार्थियों को अंतरराष्ट्रीय संबंधों, पर्यावरण नीति, वैश्विक शासन और सतत विकास की गहरी समझ प्रदान करता है। यह उन्हें बहुआयामी विश्लेषण क्षमता और नीति-निर्माण में योगदान देने हेतु तैयार करता है।

अध्ययन की विधि (Research Methodology)

शोध का स्वरूप

यह शोध प्रकृति में गुणात्मक (Qualitative) और विश्लेषणात्मक (Analytical) है। इसमें वर्णनात्मक (Descriptive) और व्याख्यात्मक (Explanatory) दोनों शोध पद्धतियों का उपयोग किया गया है। इसका उद्देश्य जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय राजनीति के बीच कार्य-कारण संबंध (Causal Relationship) को समझना है।

प्राथमिक स्रोत (Primary Sources)

प्राथमिक स्रोतों में निम्नलिखित सामग्री का उपयोग किया गया है:

- UNFCCC की आधिकारिक संधियाँ, प्रोटोकॉल और निर्णय-दस्तावेज़
- IPCC की छठी मूल्यांकन रिपोर्ट (AR6, 2021-2022)
- विभिन्न देशों के Nationally Determined Contributions (NDCs)
- संयुक्त राष्ट्र महासभा और सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव एवं वक्तव्य
- COP सम्मेलनों की आधिकारिक कार्यवाहियाँ और परिणाम दस्तावेज़
- भारत सरकार के पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के नीति दस्तावेज़

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

द्वितीयक स्रोतों में शामिल हैं:

- अंतरराष्ट्रीय संबंध और पर्यावरण राजनीति पर प्रमुख शोध ग्रंथ और पाठ्यपुस्तकें
- Nature Climate Change, Global Environmental Politics, International Affairs जैसी प्रतिष्ठित अकादमिक पत्रिकाएँ
- World Resources Institute, Brookings Institution, Observer Research Foundation के शोध-पत्र
- BBC, The Guardian, Down to Earth जैसे प्रमुख मीडिया संस्थानों की विश्लेषणात्मक रिपोर्टें
- विश्व बैंक, IMF और UNDP की जलवायु एवं विकास संबंधी रिपोर्टें

अध्ययन की पद्धति

इस शोध में निम्नलिखित पद्धतियों का प्रयोग किया गया है:

1. तुलनात्मक विश्लेषण (Comparative Analysis): विभिन्न देशों की जलवायु नीतियों और कूटनीतिक रणनीतियों की तुलना।
2. ऐतिहासिक विश्लेषण (Historical Analysis): 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन से लेकर 2023 के दुबई COP28 तक की जलवायु राजनीति का कालक्रमबद्ध अध्ययन।
3. नीति विश्लेषण (Policy Analysis): प्रमुख अंतरराष्ट्रीय जलवायु संधियों और समझौतों की कमियों और उपलब्धियों का मूल्यांकन।
4. सिद्धांत-आधारित दृष्टिकोण: अंतरराष्ट्रीय संबंधों के यथार्थवादी (Realist), उदारवादी (Liberal) और रचनावादी (Constructivist) सिद्धांतों के आलोक में विषय का अध्ययन।

शोध की सीमाएँ

यह शोध मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। समय और संसाधनों की सीमाओं के कारण क्षेत्र-कार्य (Field Work) और सर्वेक्षण (Survey) शामिल नहीं किए गए हैं। साथ ही, जलवायु परिवर्तन की अत्यंत गतिशील प्रकृति के कारण शोध के निष्कर्ष बदलती वैश्विक परिस्थितियों के अनुरूप अद्यतन किए जाने की आवश्यकता हो सकती है।

मुख्य विश्लेषण

प्रमुख वैश्विक शक्तियों की जलवायु राजनीति - संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व का दूसरा सबसे बड़ा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जक देश है। राष्ट्रपति ओबामा के कार्यकाल में अमेरिका ने पेरिस समझौते पर हस्ताक्षर किए, किंतु ट्रंप प्रशासन ने 2017 में इससे अलग होने की घोषणा की, जो 2020 में प्रभावी हुई। 2021 में राष्ट्रपति बाइडेन ने पुनः अमेरिका को पेरिस समझौते में शामिल किया। यह उतार-चढ़ाव अमेरिकी घरेलू राजनीति और जलवायु कूटनीति के बीच गहरे तनाव को दर्शाता है। चीन विश्व का सबसे बड़ा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जक है। चीन ने 2030 तक कार्बन पीक और 2060 तक कार्बन न्यूट्रलिटी का लक्ष्य रखा है। एक ओर चीन सौर ऊर्जा और इलेक्ट्रिक वाहनों में विश्व का अग्रणी निवेशक है, तो दूसरी ओर कोयले पर उसकी निर्भरता अभी भी बनी हुई है। विकासशील देश के रूप में अपनी पहचान बनाए रखते हुए चीन ने पश्चिमी देशों पर ऐतिहासिक उत्सर्जन की जिम्मेदारी डालने की रणनीति अपनाई है।

भारत की स्थिति अत्यंत जटिल है। एक ओर भारत तीसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक है, दूसरी ओर प्रति व्यक्ति उत्सर्जन अत्यंत कम है और करोड़ों लोगों तक ऊर्जा पहुंचाने की चुनौती है। COP26 में भारत ने 2070 तक Net Zero का लक्ष्य घोषित किया और 2030 तक 500 GW नवीकरणीय ऊर्जा का लक्ष्य रखा। भारत ने अंतरराष्ट्रीय सौर गठबंधन (ISA) की स्थापना में अग्रणी भूमिका निभाई है।

CBDR का सिद्धांत और उत्तर-दक्षिण विवाद - 'साझा किंतु विभेदीकृत उत्तरदायित्व' (CBDR) का सिद्धांत जलवायु वार्ताओं का सबसे विवादास्पद मुद्दा है। विकासशील देशों का तर्क है कि चूंकि वायुमंडल में संचित अधिकांश ग्रीनहाउस गैस विकसित देशों के औद्योगिकीकरण का परिणाम है, इसलिए उन्हें अधिक जिम्मेदारी लेनी चाहिए। जलवायु वित्त (Climate Finance) इस विवाद का केंद्र है। 2009 में कोपेनहेगन में विकसित देशों ने 2020 तक प्रति वर्ष 100 बिलियन डॉलर विकासशील देशों को देने का वादा किया था, जो 2022 तक भी पूरी तरह पूरा नहीं हो सका। COP27 में 'Loss and Damage Fund' की स्थापना एक ऐतिहासिक कदम था, जिसमें पहली बार माना गया कि जलवायु परिवर्तन से हुई अपूरणीय क्षति के लिए मुआवजे की व्यवस्था होनी चाहिए।

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक सुरक्षा - जलवायु परिवर्तन को अब 'सुरक्षा गुणक' (Security Multiplier) के रूप में देखा जाने लगा है। संसाधनों की कमी – विशेषतः जल और कृषि भूमि – के कारण देशों के बीच संघर्ष और आंतरिक अस्थिरता बढ़ सकती है। UN Security Council में जलवायु परिवर्तन को सुरक्षा परिषद के एजेंडे पर लाने का प्रयास किया गया है, हालांकि रूस और चीन ने इसका विरोध किया है। 'जलवायु शरणार्थी' (Climate Refugees) एक नई और गंभीर समस्या के रूप में उभर रहे हैं। प्रशांत द्वीपीय राष्ट्रों जैसे तुवालू और मालदीव का अस्तित्व ही खतरे में है। बांग्लादेश में प्रतिवर्ष लाखों लोग बाढ़ के कारण विस्थापित होते हैं। यह प्रवासन एक नई राजनीतिक चुनौती प्रस्तुत करता है जिसके लिए अंतरराष्ट्रीय कानूनी ढाँचे की अभी भी कमी है।

निष्कर्ष (Conclusion)

जलवायु परिवर्तन और अंतरराष्ट्रीय राजनीति के इस विस्तृत अध्ययन से कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आते हैं: प्रथमतः, जलवायु परिवर्तन एक ऐसी वैश्विक 'अव्यवस्थित समस्या' (Wicked Problem) है जिसका समाधान किसी एक देश, संगठन या तकनीक से संभव नहीं है। इसके लिए बहुस्तरीय, बहुपक्षीय और दीर्घकालिक अंतरराष्ट्रीय सहयोग की आवश्यकता है। वर्तमान वैश्विक शासन संरचनाएँ इस चुनौती के अनुरूप पर्याप्त नहीं हैं। द्वितीयतः, जलवायु वार्ताओं में राष्ट्रीय हित, घरेलू राजनीति और अंतरराष्ट्रीय दायित्वों के बीच लगातार तनाव बना रहता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण से देखें तो राज्य अपने तत्काल आर्थिक और सुरक्षा हितों को दीर्घकालिक पर्यावरणीय हितों से ऊपर रखते हैं।

तृतीयतः, विकसित और विकासशील देशों के बीच की खाई को पाटे बिना कोई प्रभावी वैश्विक जलवायु समझौता संभव नहीं है। जलवायु वित्त, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और 'Loss and Damage' जैसे मुद्दों पर ठोस प्रगति जरूरी है। चतुर्थतः, पेरिस समझौते का 'बॉटम-अप' दृष्टिकोण – जिसमें देश स्वेच्छा से अपने NDCs प्रस्तुत करते हैं – उत्साहजनक है, किंतु इन प्रतिबद्धताओं के कार्यान्वयन हेतु मजबूत अंतरराष्ट्रीय जवाबदेही तंत्र की आवश्यकता है।

भारत के संदर्भ में, देश एक संतुलनकारी भूमिका निभा रहा है – विकासशील देशों के हितों की पैरोकारी करते हुए भी नवीकरणीय ऊर्जा में महत्वाकांक्षी लक्ष्य निर्धारित कर रहा है। भारत को जलवायु कूटनीति में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने का अवसर और दायित्व दोनों हैं।

अंततः, जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए केवल तकनीकी समाधान पर्याप्त नहीं हैं; इसके लिए वैश्विक नैतिकता, न्याय और एकजुटता की भी आवश्यकता है। यह एक ऐसी परीक्षा है जो मानवता की सामूहिक बुद्धिमत्ता और दूरदृष्टि को परख रही है।

संदर्भ सूची (Bibliography)

1. Bodansky, D. (2010). *The Art and Craft of International Environmental Law*. Harvard University Press, Cambridge.
2. Dessler, A. & Parson, E. A. (2020). *The Science and Politics of Global Climate Change: A Guide to the Debate* (3rd ed.). Cambridge University Press.
3. Held, D., Hervey, A. F., & Theros, M. (Eds.). (2011). *The Governance of Climate Change*. Polity Press, Cambridge.
4. Hurrell, A. & Kingsbury, B. (Eds.). (1992). *The International Politics of the Environment*. Oxford University Press.
5. Stern, N. (2007). *The Economics of Climate Change: The Stern Review*. Cambridge University Press.
6. Vogler, J. (2016). *Climate Change in World Politics*. Palgrave Macmillan, London.
7. Gupta, J. (2014). *The History of Global Climate Governance*. Cambridge University Press.
8. Okereke, C. (2008). *Global Justice and Neoliberal Environmental Governance*. Routledge, London.
9. शर्मा, राजेंद्र (2018). वैश्विक जलवायु परिवर्तन और भारत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. त्रिपाठी, अवधेश (2020). पर्यावरण राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंध. विश्वविद्यालय प्रकाशन, इलाहाबाद।
11. मिश्र, सुधीर (2019). जलवायु परिवर्तन: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य. अभिव्यक्ति प्रकाशन, लखनऊ।